मन की शान्ति

मन की शान्ति

(स्वामी रामकृष्णानन्दजी का साधकों को पत्रोपदेश)

रामकृष्ण मठ

नागपुर

दो शब्द

'मन की शान्ति' यह पुस्तिका पाठकों के समक्ष रखते हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है। प्रस्तुत पुस्तिका श्रीरामकृष्णदेव के अन्यतम संन्यासी शिष्य स्वामी रामकृष्णानन्दजी के प्रेरक पत्नांशों का संक्षिप्त संकलन है।

स्वामी रामकृष्णानन्द एक ही साथ उपदेशक, वक्ता तथा लेखक भी थे। उन्होंने बंगला, अंग्रेजी तथा संस्कृत में अनेक व्याख्यान दिये और लेख आदि भी लिखें। उनमें से कुछ पुस्तकाकार में प्रकाशित भी हुए हैं। बंगला भाषा में उनका लिखा 'रामानुजचरित' उनकी प्रतिभा का एक उत्कृष्ट नमूना तथा बंगला-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। अंग्रेजी में उनके जो व्याख्यान पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए है उनमें 'Universe and Man' (ब्रह्माण्ड और मानव), 'Sri Krishna The Pastoral and King-maker' (गोपालक तथा नृपनिर्माता श्रीकृष्ण) 'The Soul of Man' (मानव की आत्मा) आदि ने अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। प्रस्तुत पुस्तिका "CONSOLATIONS" का अनुवाद है।

हमें विश्वास है इस पुस्तिका के पठन-मनन से पाठकों को मन की शान्ति प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होगी।

नागपुर
२०. १०. १९९६

- प्रकाशक

"शशी मठ का आधारस्तंभ था। उसके बिना मठ में जीवन असंभव था। वह मठ की माता था।"

"शशी किस प्रकार स्थान को जागृत करके बैठा रहता है ! उसकी दृढनिष्ठा एक महान आधारस्वरूप है।"

- स्वामी विवेकानन्द

भूमिका

शशि महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द) प्रेम और पवित्नता की सच्ची मूर्ति थे। शरीर और मन की ऐसी पवित्नता मैने अभी तक नहीं देखी। अपने आदर्श और जीवन-लक्ष्य श्रीरामकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति और प्रेम असीम था।

उनकी तुलना श्री हनुमानजी की भगवान् राम के प्रति भक्ति और प्रेम से ही की जा सकती है। स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द तथा अपने अन्य गुरु-भाइयों जिन्हें वे श्रीरामकृष्ण का ही अंग समझते थे, के प्रति उनका स्नेह-प्रेम पूजा की ही परिधि में आता था। ऊँच-नीच, धनी-निर्धन के बीच उनके मन में कोई भेद नहीं था। उनके मन में सभी के कल्याण की उत्कण्ठा थी। वे खुले हाथों सबका स्वागत करते तथा उनके पास जो भी होता सब उन्हें दे देते। प्रत्येक प्राणी में गुरुदेव की पूजा करना तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसके दिव्यत्व की अनुभूति करने में सहायता देना ही उनका कर्तव्य था और इस कर्तव्य की बलिवेदी पर उन्होंने स्वयं की आहुति दे दी। वे दूसरों से जो करवाना चाहते, स्वयं उसका बड़ी सतर्कता से पालन करते। वे इस धराधाम में श्रीरामकृष्ण के लिए आये थे तथा उन्होंने मन-प्राण पूर्वक उनकी सेवा की तथा उनके ही पास लौट गये। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें 'स्वामी रामकृष्णानन्द' नाम ठीक ही दिया था।

उनके पत्र अवश्य ही अति आकर्षक और सान्त्वना देनेवाले हैं। वे श्री गुरुमहाराज के अनन्यतम ही नहीं, सबसे अधिक निष्ठावान भक्त थे। श्री गुरुमहाराज से भिन्न और कुछ भी उनके मन में नहीं था। वे उन्हीं से परिपूर्ण थे। जो भी थोड़ी सावधानी और एकाग्रता से उनके पत्रों को पढ़ेगा, उस पर उनका गहरा प्रभाव अवश्य पड़ेगा। उनका जीवन, प्रभाव तथा सम्पूर्ण हृदय से दक्षिण भारत में किया गया उनका कार्य वह नींव है, जिस पर आज सभी लोग कार्यों का निर्माण कर रहे हैं। दिनोंदिन लोग उनका महत्त्व अधिकाधिक समझेंगे। इस लघु पुस्तिका के प्रति मेरा आशीर्वाद और शुभकामनाएँ हैं। यह उन सभी को शान्ति प्रदान करे, जिनके पास इसकी प्रति है।

११ दिसम्बर १९२७

- **शिवानन्द**
रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, बनारस

मन की शान्ति

(स्वामी रामकृष्णानन्दजी का साधकों को पत्रोपदेश)
तुम चाहते हो कि संसार की उलझनों से कैसे छूटा जाय इसका उपाय मैं तुम्हें बताऊँ। इसके उत्तर में मैं तुम्हें यह याद दिला दूँ कि जो उलझने हजारों जन्मों द्वारा लायी गयी हैं, उन्हें एक दिन में दूर नहीं किया जा सकता।

हाँ, तुम ठीक कहते हो। हमें इसी क्षण से संसार के जाल से बचना चाहिए, क्योंकि कौन जानता है मृत्यु कब हमें हमारे स्वजनों के स्नेहपूर्ण आलिंगन से विलग कर देगी। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपने जीवनक्रम के सम्बन्ध में कोई आकस्मिक निर्णय कर लें। जिस प्रकार बालक सदैव सहायता के लिए अपने माता-पिता की ओर ही जाता है, उसी प्रकार सदैव अपने मन को प्रभु की ओर ही मोड़ना तथा जिस भी परिस्थिति में श्रीकृष्ण ने तुम्हें रखा है, उसी में सन्तुष्ट रहना - यह सफलता का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

ईश्वर तुम्हें जहाँ रखना चाहते हैं, वहीं शान्तिपूर्वक रहो। श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों को पढ़ो और उन पर विचार करो। वे कहते हैं, "पौधे के चारों ओर बाड़ लगा रखनी चाहिए, जिससे बकरियाँ उसे खा न जायँ। पर वही पौधा जब बड़ा वृक्ष हो जाता है, तब सैकड़ों बकरियाँ उसकी छाया में आश्रय ले सकती हैं।" अतः, सौभाग्य से जब किसी के हृदय में विश्वास और त्याग के भाव जागें, तो उन भावों को अध्यवसायपूर्वक, संसारी लोगों से अलग रहकर, पुष्ट करना चाहिए। पर जब वे एक बार हमारे हृदय में दृढ़ हो जाते हैं, तब कोई उन्हें हिला नहीं सकता।

अच्छी पुस्तकें पढ़ो। एक पुस्तक मैं तुम्हें सुझाता हूँ - ईशानुसरण (The Imitation of Christ)। यह पुस्तक तुम्हें बड़ी शान्ति देगी। सान्त्वना और सच्ची भक्ति के उन शब्दों को अपने हृदय में अंकित कर लो, जो थॉमस कैम्पिस की इस अमूल्य पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर तुम अवश्य पाओगे। वे स्वयं ईश्वर और ईसा के सच्चे भक्त थे।

पशु और मनुष्य के बीच मुख्य अन्तर यह है कि जब तक पशु को भोजन और आवास की सुविधा मिलती रहती है, वह कभी उस स्थान को बदलना नहीं चाहता, जब कि मनुष्य - सच्चा मनुष्य - सदैव ऊँचे से ऊँचा उठने का प्रयत्न करता है। उच्च आदर्शों के लिए निरन्तर प्रयत्न सच्चे आदमी का लक्षण है। वे सभी लोग जो सत्पुरुष और महान् होना चाहते हैं, उनका मुख्य लक्ष्य होना चाहिए - 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' - सभी धर्मों को छोड़ेकर मेरी (भगवान् की) शरण ग्रहण कर।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की ओर जाने का कठिन परिश्रम कर रहा है, किन्तु हमारे रास्ते भिन्न भिन्न हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपना मार्ग स्वयं बनाना होगा तथा ईश्वर ने हमें जो साधन दिये हैं, उनके सहारे यात्रा करनी होगी।

हम सबको अपने बन्धनों को तोड़ देना चाहिए, किन्तु तुमने क्या कभी बन्धनों को एक ही आकस्मिक झटके में टूटते देखा है? यदि तुम अपने बन्धनों को काटना चाहते हो, तो उन पर सतत आघात करते रहने का पर्याप्त धैर्य तुममें होना चाहिए। किसी भी आकस्मिक क्रिया से कभी कोई शुभ परिणाम उत्पन्न नहीं हुआ। जब तुम्हारे मन में त्याग की वृत्ति तीव्रतम होगी, जब अन्य सब वृत्तियाँ तुम्हें संसार-वृक्ष से बाँधने में असमर्थ हो जायँगी, तब तुम उसी प्रकार प्रभु की गोद में पड़ जाओगे, जिस प्रकार पूरी तरह पक जाने पर फल पृथ्वी की गोद में गिर पड़ता है।

तुम जो कहते हो कि संसार प्रबल प्रलोभन का स्थान है, वह वास्तव में सत्य है। किन्तु क्या तुम यह नहीं जानते कि शक्तिशाली विपरीत वायु दुर्बल वृक्षों की जड़ों की शक्ति को ही पुष्ट करती है। शुभ नैतिक सिद्धान्त जो अभी तुम्हारे मन में उतने दृढ़ नहीं हैं, प्रलोभनों से सतत संघर्ष के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से गहरी जड़ें जमा लेंगे। नियमित व्यायाम और संघर्ष व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत कर देते हैं। हमारा मानसिक स्वास्थ्य भी इस नियम का अपवाद नहीं है। निस्सन्देह यह भूमि बहुत ही फिसलन-भरी है, जिसमें बिना गिरे चलना मनुष्य के लिए बहुत कठिन है। किन्तु जो व्यक्ति प्रगति-पथ की फिसलनों की अधिक चिन्ता न कर दृढ़तापूर्वक बढ़ता जाता है, वह अवश्य ही इस दलदल के पार हो जाता है। जब तक वह ऐसे स्थान पर न पहुँच जाय, जहाँ भूमि साफ और फिसलन से रहित हो और जहाँ वह उस दैवी सत्ता का साक्षात्कार कर ले, जिसके लिए वह इतने दिनों से प्रयत्न कर रहा था, तब तक उसे गिरते-उठते, किन्तु कभी भी पराजय स्वीकार न कर, सदैव सामने देखते हुए दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ना चाहिए। यदि यदा-कदा तुम फिसल जाओ, तो उसकी चिन्ता न करो। मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है। निराश न होओ। दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ो। संसार के फिसलन-भरे मार्ग को निरापद पार कर जाने की आशा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। पार करने के प्रयत्न में असफल होने के भय से इस दलदल के बीच में बैठ जाना निरी मूर्खता है। 'पुनः पुनः प्रयत्न करो' के स्वर्णिम नियम को न भूलो। स्काटलैण्ड के उस ब्रूस का स्मरण करो, जो छह बार पराजित होकर भी अन्त में सातवीं बार विजयी हुआ।

यह जानकर कि सभी चीजें श्रीकृष्ण से ही निःसृत होती हैं, तुम्हारे पास जो कुछ आये उसी में सन्तुष्ट रहो। उनसे सतत् प्रार्थना करना न भूलो। उनकी कृपा तुम्हें वह सब दे सकती है, जिससे तुम्हारा वास्तविक कल्याण हो। सदैव उनकी कृपा पर निर्भर रहो। शान्त और स्थिर रहो। अस्थिरता अपने आप में एक रोग है। यह जान लो कि धर्म का अर्थ परमपुरुष की इच्छा के प्रति आत्मसमर्पण में प्रेम और सन्तोष का अनुभव करना है।

'हृदय में साहस और ऊपर ईश्वर को रख जीवित वर्तमान में कर्म करो।'

दुःख और सुख हरेक के अपरिहार्य साथी हैं। जब एक आता है, तो दूसरा चला जाता है। किन्तु स्थायी दोनों ही नहीं रह सकते। यह जानते हुए हमें उनके प्रभाव से विचलित नहीं होना चाहिए। ईश्वर पर पूर्णतः निर्भर रहकर अपना कर्तव्य करते रहो। सदैव ईश्वर की इच्छा के अधीन रहो और प्रत्येक वस्तु को उत्तम अर्थ में ग्रहण करो। तुम्हें भविष्य के लिए चिन्तित नहीं होना चाहिए। यहाँ इस संसार में जो कुछ भी होता है, हमारे कल्याण के लिए ही होता है, क्योंकि सभी कुछ ईश्वर के द्वारा ही संचालित है। साथ ही, कर्तव्यपरायण होना हमारा कर्तव्य होना चाहिए।

स्वयं के प्रति कर्तव्यपरायण होने का प्रयत्न करो। यदि पत्नी और सन्तान हैं, तो उनके प्रति भी कर्तव्यपरायण बनो। अपने सम्बन्धियों, मित्रों तथा पड़ोसियों के प्रति भी कर्तव्यपरायण रहो। उदार, ईमानदार, सरल और सत्यवादी बनो। सर्वोपरि, अपने निर्माता ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम रखो। जब तक यह तुम्हारा स्वभाव न बन जाय, तब तक इस प्रकार का जीवन व्यतीत करो, क्योंकि तुम्हें इस सत्य को जान लेना चाहिए कि जब तक मनुष्य शरीर और मन से पवित्र नहीं हो जाता, तब तक योग के पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने का उसे अधिकार नहीं है। योग साँस रोकने और प्राणायाम या विभिन्न आसन करने तक ही सीमित नहीं है। योग का अर्थ है - समस्त चित्तवृत्तियों या इच्छाओं से रहित होना। अतः सदैव अपने माता-पिता, पत्नी-बच्चे, सम्बन्धी-मित्र तथा पड़ोसियों के प्रति कर्तव्यपरायण रहकर पवित्र बनने का प्रयत्न करो। पहले एक आदर्श सद्गृहस्थ बनने का प्रयत्न करो, क्योंकि तभी तुम सच्चे योगी हो सकोगे।

तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं हमारे अध्यक्ष (श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज) को यहाँ लाने के लिए पुरी रवाना हो रहा हूँ। उनके समान पवित्र महापुरुष जिसका भी स्पर्श करते हैं, वह केवल पवित्र ही नहीं हो जाता बल्कि पवित्र करने की शक्ति भी प्राप्त कर लेता है। वे यहाँ व्याख्यान देने नहीं आ रहे हैं, अपितु जिन्हें धर्म की आवश्यकता है, उन्हें धर्म प्रदान करने आ रहे हैं। सार्वजनिक व्याख्यानों से विशेष कार्य नहीं होता। उथली चर्चा में क्या रखा है? धर्म की चर्चा तो सभी कर सकते हैं, किन्तु ऐसे व्यक्ति कहाँ हैं, जो धर्म प्रदान कर सकें? ये ऐसे महापुरुष हैं, जो दुःखी हृदय में आशीर्वाद की वर्षा कर सकते हैं, जो प्रत्यक्ष धर्म प्रदान कर मनुष्य को ईश्वर की ओर ले जाते हैं। आधुनिक युग की तथाकथित बुद्धिमत्ता के नितान्त खोखलेपन का तुम्हें स्मरण कराना आवश्यक नहीं है। जिन लोगों का मन संसार में बद्ध है, जिनमें सत्य के असीम आकाश में उड़ने की शक्ति नहीं है, जिनका चिन्तन अज्ञेयवाद, संशयवाद या नास्तिकता में समाप्त होता है, जिनके नैतिक सिद्धान्तों का कोई शाश्वत आधार नहीं है, जिनका अज्ञान उन्हें जन्म और मृत्यु के दो छोरों से बाँधकर क्षणभंगुर जीवन में सीमित रखता है, ऐसे व्यक्तियों के ग्रन्थों को पढ़कर मनुष्य सही मायने में बुद्धिमान नहीं हो सकता। . . . रामकृष्ण मिशन के उदात्त कार्य के प्रति तुम जो उत्साह प्रदर्शित करते रहे हो, उसे अब हजारगुना बढ़ जाना चाहिए, क्योंकि इस मिशन के मूर्तिमन्त विग्रह परम पवित्र अध्यक्ष महाराज अब दक्षिण भारत में पदार्पण करने ही वाले हैं।

कभी निष्क्रिय न रहो, क्योंकि निष्क्रियता सब प्रकार के बुरे विचारों की जननी है। अपने कर्तव्य-पालन में सतत सावधान रहो। अपने भीतर की समस्त जड़ता को दूर कर दो। आलस्य जघन्यतम पाप है। पूर्णता-प्राप्ति का कोई राजमार्ग नहीं है। भावुकता का कोई लाभ नहीं। तुम्हें कठोर परिश्रम करना चाहिए और भगवान् तुम्हें जिस स्थान में भी रखे, वहाँ सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। यदि तुम भगवान् के निमित्त कुछ सांसारिक कष्टों को सहन नहीं कर सकते, तो तुम वास्तव में प्रभु के अधम प्रेमी हो! जो काम तुम्हें अभी असन्तुष्टिकर लगते हैं, वे ही बाद में तुम्हारे सहायक सिद्ध होंगे। भगवान् हम सभी से अधिक बुद्धिमान हैं। वे जानते हैं कि तुम्हारे लिए क्या आवश्यक है तथा तुम्हें कहाँ रखना चाहिए। यदि तुम उनके विधान का प्रतिरोध करते हो तो वास्तव में तुम उनकी असीम कृपा और प्रेम का ही विरोध करते हो। आज्ञाकारिता दैवी है और आज्ञा न मानना आसुरी।

हम निरे अज्ञान के कारण ही सब प्रकार की आधारहीन चिन्ताओं में पड़ जाते हैं। कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं। नेता को एकदम अहंकारशून्य होना चाहिए। 'मैं नहीं, तुम' यह उसका मूलमंत्र होना चाहिए। इसे स्मरण रखो और कार्य करते जाओ, तुम्हारी विजय निश्चित है। सभी से मीठी बातें करो। सभी कुछ एक साथ तुरन्त कर लेने का प्रयत्न न करो। पृथ्वी और स्वर्ग में ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो उनके मिशन द्वारा समस्त विश्व में इतनी सफलतापूर्वक संचारित प्रबल अध्यात्म-धारा को रोक सके। प्रसन्न होओ कि तुम प्रभु की चुनी हुई सन्तान हो। वेदान्त सोसायटी के सभी सदस्यों को यह बता दो कि केवल वे ही ज्ञानलाभ नहीं करेंगे, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति जो उनके सम्पर्क में आएगा, वह भी ज्ञानलाभ करेगा।

पूर्णतः आत्मनिर्भर बनो। ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं। साथ ही सभी से सहयोग करो। यदि बाहर से सहायता आये तो अच्छा, न आये तो भी अच्छा। यह जान लो कि श्री गुरु महाराज ने तुम्हें अपना कार्य करने के लिए चुना है, तथा जो भी तुम्हारे इस कार्य में सहयोग देता है, उसे स्वयं को अत्यन्त भाग्यवान समझना चाहिए, क्योंकि यह हरदम सम्भव नहीं कि मनुष्य को ईश्वर का कार्य करने के लिए चुना जाय।

ऐसा सोच तुम चिन्तित न होओ कि किसी व्यक्ति द्वारा उनके कार्य को किसी प्रकार क्षति पहुँचायी जा सकती है। यदि कोई व्यक्ति आकाश की ओर थूकता है, तो थूक उसके ही मुँह पर गिरेगी। श्रीरामकृष्ण की परम दयालुता में विश्वास रखो। उनके सर्वपवित्र संघ में कुछ भी गलत नहीं हो सकता। यदि मैं कभी कभी तुमसे अपने श्री गुरु महाराज के लिए कुछ माँगता हूँ, तो वह केवल तुम्हारे कल्याण के लिए है। ईश्वर ने तुम्हें शुद्ध बनाया है और यदि तुम प्रयत्न करो, तो भी अशुद्ध नहीं हो सकते। श्रीरामकृष्ण के कार्य के निमित्त तुम्हारे प्रामाणिक तथा प्राणप्रण परिश्रम के लिए हम सदैव कृतज्ञ हैं। तुम धन्य हो ही। यह निश्चित जानो कि जो भी व्यक्ति सच्चा और अच्छा है, वह संसार का सबसे भाग्यवान व्यक्ति है। और चूँकि तुम उसी प्रकार के एक व्यक्ति हो, अतः तुम पर उनकी कृपा है ही।

जिसे ईश्वर सफल करना चाहते हैं, उसकी प्रगति को कोई रोक नहीं सकता। जब तक मनुष्य कठिनाइयों की पाठशाला में से होकर नहीं गुजरता, उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता। अपनी कठिनाइयों से हम बहुत कुछ सीखते हैं। जब तुमने स्वयं को पूर्णतः प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया है, तब शान्ति और आनन्दपूर्ण जीवन का रहस्य जान ही लिया है। जीवन एक सतत संग्राम है। तुम्हें इन्द्रियों के साथ घोर संग्राम करना चाहिए, परिणाम ईश्वर के हाथों में है। युद्ध करना ही तुम्हारा कर्तव्य है। तुम्हारी विजय होगी या पराजय, यह सर्वथा ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है।

सन्तोष ही वह मूलमंत्र है, जो विपरीत परिस्थितियों से सुरक्षित निकल जाने का आश्वासन हमें दे सकता है। ईश्वर कल्याणमय हैं। वे ही सब करते हैं, अतः वे कल्याण से भिन्न कुछ नहीं कर सकते। यही सब धर्मों की शिक्षा है। इसका पालन करो और मानसिक शान्ति स्वयं प्राप्त होगी। हम किसी के मन में बलपूर्वक त्याग नहीं ला सकते। सभी लोग साधु या साध्वी बनने के लिए नियत नहीं किये गये हैं। प्रत्येक के जीवन का एक प्रयोजन है और इसीलिए वह

ईश्वर द्वारा यहाँ भेजा गया है। सबके साथ मिल-जुलकर कार्य करो। शान्तिस्थापन करनेवाले धन्य हैं, क्योंकि उन्हें ही ईश्वर की सन्तान कहा जाएगा।

कठिनाई में तुम्हें हताश नहीं होना चाहिए। पाण्डवों की माता कुन्ती ने भगवान् श्रीकृष्ण से विपत्तियों का ही वर बार बार माँगा, क्योंकि विपत्ति में ही प्रभु का स्मरण अधिक होता है। . . . युवावस्था में इन्द्रियाँ प्रबल होती हैं। तुम्हें शक्तिशाली होने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे इन्द्रियाँ तुम्हें पराजित न कर सकें। कामुकता युवकों का प्रमुख शत्रु है। नारीमात्र को माता के रूप में देखो। शारीरिक तथा मानसिक कार्यों में अपने आपको लगाये रखो तथा अपने मन को सदैव भगवान् श्रीकृष्ण में स्थिर रखो। यदि मन को सदा ईश्वर में स्थिर न रखा जा सके, तो उसे किसी अन्य सद्-विषय में लगा रखना बुद्धिमानी है। इस प्रकार प्रशिक्षित मन को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में स्थिर करना अधिक कठिन न होगा। यह जान लो कि तुम स्वयं ईश्वर हो और परिणामस्वरूप अपनी इन्द्रियों के स्वामी हो। अपनी इन्द्रियों को स्वयं पर हावी क्यों होने दोगे? दुर्बल मनुष्य दुष्ट व्यक्तियों और दुष्प्रवृत्तियों का शिकार हो जाता है। मानसिक दुर्बलता शारीरिक दुर्बलता की तरह ही बुरी है।

मैं तुम्हें गीता के कुछ अंशों का स्मरण करा दूँ, जो अत्यधिक निराश व्यक्तियों के हृदयों से भी निराशा को दूर कर उन्हें शक्ति और सहारा देते हैं। अर्जुन ने जब भगवान् से यह पूछा कि जो व्यक्ति योग के मार्ग में भ्रष्ट होकर असफल हो जाता है, तो क्या उसके इहलोक और परलोक दोनों नष्ट नहीं हो जाते, तब भगवान् ने उसे उत्तर दिया - 'न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति' - 'हे सखा! धर्म का थोड़ासा भी आचरण करनेवाले व्यक्ति की कभी दुर्गति नहीं होती। वह धार्मिक योगियों के कुल में जन्म लेता है तथा पुनः शुद्ध और पवित्र जीवन बिताते हुए ईश्वर-प्राप्ति की साधना में लग जाता है।' अतः क्षण भर के लिए भी यदि तुम सद्भाव का अनुभव करते हो या सत्-चिन्तन करते हो, तो निश्चय ही वह तुम्हारे लिए बड़ी उपलब्धि होगी। निराशा को कभी स्थान न दो, क्योंकि स्वयं भगवान् ने मनुष्य को यह आश्वासन दिया है - 'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तःप्रणश्यति' - 'हे अर्जुन! सभी के सम्मुख यह घोषणा कर दो कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।'

हम लोग स्वाभाविक रूप से संसारी मनुष्यों के पल्ले पड़नेवाली विपरीत और अप्रिय परिस्थितियों से अत्यधिक विक्षुब्ध तथा विषण्ण हो श्रीरामकृष्ण देव के पास आते थे, तब वे हमें सान्त्वना देते हुए कहा करते थे, "लुहार की निहाई के समान बनो। लुहार प्रतिदिन उस पर असंख्य बार हथौड़े का प्रहार करता है, किन्तु निहाई सदैव शान्त और अचल रहती है। संसार तुम पर सदा प्रहार कर सकता है, किन्तु उससे विचलित न होओ और निहाई की भाँति अचल रहो। सर्वशक्तिमान ईश्वर की करुणा और दयालुता में विश्वास रखो। अपने विश्वास में दृढ़तापूर्वक स्थिर रहो, तो फिर संसार की अशान्ति और विपत्तियाँ तुम पर प्रभाव नहीं डाल सकेंगी। तुम्हें घबराहट में डालने के बदले वे स्वयं घबरा जाएँगी। गीता को अपना सदैव का साथी बना लो। सदैव उत्साही बने रहो। अपनी आत्मा को, जो सदैव मुक्त और आनन्दपूर्ण है, कभी दुःख और निराशा के अधीन न होने दो।

तुम यह शिकायत मत करो कि तुम अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो रहे हो। सभी मनुष्यों के साथ ऐसा होता है। केवल कुछ ही ऐसे महात्मा, जो पहले से ही पूर्ण हैं, यह कह सकते हैं कि वे मनसा, वाचा, कर्मणा पूर्णतः पवित्र हैं। मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है। हमें केवल यही देखना है कि हम जगत् के स्वामी से प्रेम करना न भूले। अतः साहस रखो। यद्यपि तुम यदा-कदा गिर पड़ते हो, तथापि उठने का प्रयत्न करो। प्रत्येक बच्चा चलना सीखने के पूर्व लाख बार गिरता है। मैं तुम्हें यह विश्वास दिला सकता हूँ कि प्रभु उनकी सहायता करते हैं, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।

यह निश्चित जानो कि कोई मनुष्य कितना भी बुरा क्यों न हो और भले ही सारे संसार ने उसे त्याग दिया हो, पर ईश्वर का प्रेम उसके प्रति भी उतना ही तीव्र होता है, जितना कि किसी सर्वाधिक पवित्र व्यक्ति के प्रति। एक बच्चा बड़ा होकर भले ही हत्यारा हो जाए, पर माँ का प्रेम उसके प्रति अक्षुण्ण ही बना रहता है। समस्त माताओं को एक साथ मिला देने पर भी ईश्वर उनसे कहीं अधिक दयालु और प्रेमी है। उसकी प्रेमपूर्ण कृपा में कभी विश्वास मत खोओ। वह जघन्यतम पापियों पर भी सदैव दृष्टि रखता है। इसे जानकर प्रसन्न रहो।

स्वयं से असन्तुष्ट न होओ। तुम ईश्वर की सन्तान हो, और स्वयं के प्रति असन्तुष्ट होकर तुम ईश्वर की सन्तान के प्रति ही असन्तुष्ट होते हो। क्या यह बुरा नहीं है? अतः स्वयं का सम्मान करो, क्योंकि तुम ईश्वर के पुत्र हो और तुम्हें उत्पन्न कर उसने कोई गल्ती नहीं की है, क्योंकि वह सभी गल्तियों से परे हैं। अतएव वह तुम्हारे द्वारा अवश्य ही कुछ कराएगा, ऐसा कुछ जिसके लिए वह तुम्हें इस पृथ्वी पर ले आया है। ईश्वर के प्रति तुम्हारा अनुराग जितना बढ़ेगा, उतनी ही तुम्हारी वासना कम होती जायगी। सदैव सन्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करो। सत्यवादी और अच्छे बनो तथा विषय-भोगों की आकांक्षा न रखो। इसे ही तुम अपना लक्ष्य और आदर्श बना लो। कठिन संघर्ष करो और यदि इस संघर्ष के बीच तुम्हारे पैर फिसल जायँ तथा तुम कई बार गिर भी जाओ, तो उससे क्या? पुनः उठ पड़ो और संघर्ष करते रहो। निश्चिन्त रहो, अन्त में तुम विजयी होओगे। जब तक तुम पूर्ण न हो जाओ, अर्थात् तुम जो होना चाहते हो वह न हो जाओ, तब तक कभी संघर्ष न छोड़ो। भगवान् श्रीरामकृष्ण सभी विपत्तियों से तुम्हारी रक्षा करें तथा तुम्हें सुरक्षित और स्वस्थ रखें।

हाँ, अपने निर्णय में तुम सही हो। यहाँ हमें किसी प्रकार अपना जीवन चलाना है, चाहे भिखारी के रूप में हो, चाहे राजा के रूप में। किन्तु हमारा आदर्श और लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम जहाँ भी रहें, भगवान् श्रीरामकृष्ण को कभी न भूलें। यह भी सत्य है कि हम जहाँ कहीं भी रहें, ईश्वर हमें नहीं त्यागते। वे प्रभु ही हमें जीवन के एक स्तर से दूसरे स्तर पर ले जाते हैं। इसे जानकर प्रसन्न रहो। प्रतिदिन मैं तुम्हारी याद करता हूँ और अपने गुरु महाराज से तुम्हारे लिए प्रार्थना करता हूँ। चूँकि तुम्हारे पास भगवान् श्रीरामकृष्ण का चित्र है, अतः मेरा यही परामर्श है कि उन्हें भगवान् के अवतार के रूप में ही देखो। उनके चित्र के सामने प्रार्थना करो और निश्चय जानो कि तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी। उनसे अधिक दयालु और कोई नहीं है। ओह! जब कभी मैं उनकी महिमा और महानता का स्मरण करता हूँ, तब तुरन्त ही आनन्द में विभोर हो जाता हूँ। ऐसा न सोचो कि वे तुम्हारे साथ नहीं हैं। वे सदैव ही उन लोगों के पास हैं, जो अच्छे हैं, और चूँकि तुम बहुत अच्छे लड़कों में से एक हो, इसलिए मैं कह सकता हूँ कि प्रलोभनों से

तुम्हारी रक्षा करने के लिए वे सदैव तुम्हारे साथ हैं। उनका चित्रपट उनकी सजीव आत्मा है। उसे केवल एक चित्रपट ही न समझो। यह उनकी सजीव आत्मा है। यदि सम्भव हो, तो फूल, धूप आदि उन्हें अर्पित करो। यदि न हो, तो अपने हृदय का तीव्र प्रेम और पश्चात्ताप-रूपी फूल उन्हें चढ़ाओ। समस्त संसार जितने फूल और धूप उत्पन्न कर सकता है, उन सबकी ढेरी की अपेक्षा पश्चात्तापपूर्ण हृदय के चढ़ावे को वे अधिक पसन्द करते हैं। यदि तुम सच्चे हृदय से उनसे सहायता की याचना करो, तो वे निश्चय ही तुम्हारी सहायता करेंगे। वे प्रेम और करुणा के अवतार हैं।

मेरे अनियमित पत्र-व्यवहार से यह न समझ लो कि मैं अपने मित्रों को नहीं चाहता हूँ। प्रेम शारीरिक की अपेक्षा मानसिक अधिक होता है। मैं अपने गुरुदेव से सदैव ही तुम पर और तुम्हारे स्वजनों पर आशीर्वाद की वर्षा करने की प्रार्थना करता हूँ।

भगवान् श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "जैसे पानी का कोई रूप नहीं होता, उसे जिस पात्र में रखो उसी आकार का हो जाता है, वैसे ही ईश्वर का कोई विशेष रूप नहीं हैं।" पर ईश्वर प्राणीमात्र के ईश्वर हैं, इसलिए तुम्हें उन्हें मनुष्य के रूप में ही सीमित नहीं करना चाहिए। यदि तुम्हारे पिता एक विदेशी का वेश धारण कर लेते हैं, तो इसके कारण वे तुम्हारा सम्मान और श्रद्धा नहीं खो देते। अतः ईश्वर का कोई भी रूप क्यों न हो, तुम्हें सदैव उनसे प्रेम करना चाहिए, क्योंकि वे 'तुम्हारे' ईश्वर हैं। निस्सन्देह ईश्वर के किसी विशेष रूप को कोई व्यक्ति अपनी इष्टमूर्ति के रूप में प्यार कर सकता है। वैष्णव कृष्णरूप को चाहता है, शाक्त शक्ति-रूप को, आदि आदि। उनका जो रूप तुम्हें सबसे अच्छा लगे, उसमें ही उनकी पूजा करो। जैसे हिन्दू परिवार की बहू परिवार के सभी सदस्यों के प्रति श्रद्धा रखती है, किन्तु पति से उसका विशेष प्रेम-सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार तुम्हें ईश्वर के विभिन्न रूपों के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए, किन्तु तुम्हारे जीवन का एकमात्र ईश्वर तो तुम्हारे इष्टदेवता ही होने चाहिए।

यह बहुत अच्छा है कि श्रीरामकृष्ण के प्रति तुम्हारी श्रद्धा और भक्ति है। ऐसी बात नहीं कि उनकी पूजा करने से तुम माँ के भक्त नहीं रह जाते, क्योंकि श्रीरामकृष्ण तो शक्ति के ही प्रकट रूप हैं। शक्ति जो कि असीम है और इसलिए अगम्य है, उसी ने सर्वसुलभ होने के लिए इस युग में श्रीरामकृष्ण का सौम्य रूप धारण किया है। इस युग के प्रारम्भ में जब उसने श्रीकृष्ण का रूप धारण किया था, तब युग युग में अपने अवतार लेने का कारण बताया था -

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

श्रीरामकृष्णदेव के अधिकांश शिष्यों ने अपने गुरुदेव के पार्थिक देहत्याग के पश्चात् भी उनके दर्शन किये हैं, और यदि उनके दर्शन की तुम्हारी इच्छा सच्ची है, तो वे अवश्य ही तुम्हें सन्तुष्ट करेंगे। ईश्वर के विभिन्न रूप रूपकमात्र नहीं हैं, वे सत्य हैं। निर्विकल्प समाधि में न तो सृष्टि ही रहती है, और न स्रष्टा, वहाँ पूजा भी नहीं है। उसे अभी हम छोड़ दें, क्योंकि नमक का पुतला समुद्र में मिल गया है। किन्तु जब तक हमारा क्षुद्र व्यक्तित्व है, तब तक हमें साकार ईश्वर की आवश्यकता है। जगत् का रचयिता ईश्वर सदैव साकार है और उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति उतनी ही सत्य

है, जितना वह स्वयं। पूजा ईश्वर के साकार रूप में ही सम्भव है। मैं तुम्हें यही पद्धति ग्रहण करने का परामर्श देता हूँ। श्रीरामकृष्ण के लिए जिओ और कार्य करो तथा मन-प्राण पूर्वक उनकी पूजा करो और इस प्रकार इसी जीवन में मुक्ति प्राप्त कर लो। उन्हें साक्षात् ईश्वर के ही रूप में देखो। पिता और पुत्र अथवा माता और सन्तान के बीच कोई अन्तर नहीं है। यदि मनुष्य पत्थर की प्रतिमा की पूजा करके मुक्ति पा सकता है, तो ईश्वर की जीवित प्रतिमा की पूजा द्वारा लक्ष्य पर उसके पहुँचने की अधिक सम्भावना है। तुम सीधे ईश्वर की पूजा नहीं कर सकते, क्योंकि इन देवमानवों को छोड़कर उसकी धारणा ही नहीं कर सकते। यदि श्रीरामकृष्ण की तरह देवमानव यहाँ जन्म न लें, तो ईश्वर के बारे में कौन क्या जान सकता है? वे लोग आध्यात्मिक जगत् के कोलम्बस हैं।

बिना जड़ों के वृक्ष नहीं होता। बिना भीतर के बाहर नहीं होता। तुम्हें अपने भीतर और बाहर दोनों जगह उसकी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वह सर्वत्र विद्यमान है। वह मूर्ति में भी उतना ही है, जितना तुम्हारे भीतर। अपने को उसकी सन्तान या सेवक के रूप में उससे भिन्न मानकर सर्वत्र उसकी पूजा करो। द्वैतवादी कहता है, "मैं ब्रह्म का हूँ;" अद्वैतवादी कहता है, "मैं ब्रह्म ही हूँ।" इन दोनों कथनों में विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि जो ब्रह्म का है, वह ब्रह्म के साथ एक भी है। जीव-ब्रह्म-ऐक्यानुभूति केवल निर्विकल्प समाधि में ही होती है। और जैसा कि मैंने तुम्हें बताया ही है, वहाँ पूजा नहीं होती। सम्पूर्ण मन-प्राण पूर्वक भक्ति ही उसकी उपलब्धि का एकमात्र उपाय है। यह सामान्य और विशेष दोनों प्रकार की शिक्षा है। श्रीरामकृष्ण के प्रति मन-प्राण पूर्वक भक्ति रखो। तुम ठीक कहते हो . . . "वे तभी आते हैं, जब हमारा क्षुद्र अहंकार नष्ट हो जाता है।" हमारे भीतर का पशु, हमारा क्षुद्र अहं जो स्वयं को दुर्बल और पापी समझता है, उसका बलिदान 'नरबलि' के नाम से जाना जाता है। यह एक वास्तविक वीर के द्वारा ही किया जा सकता है, क्योंकि 'जितं जगत् केन मनो हि येन' - 'किसके द्वारा संसार जीता जाता है? उसके ही द्वारा, जिसने अपने मन को जीत लिया है।'

जो धर्म दुर्बलता पर आधारित है, वह पूर्णतः मिथ्या और हानिप्रद है। श्रुति कहती है - 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' - 'दुर्बल के द्वारा आत्मोपलब्धि नहीं की जा सकती।' यदि मैं ईश्वर की सन्तान हूँ, तो उसी की जाति का हूँ और यदि वह पूर्णतः पवित्र है, तो मैं भी पूर्णतः पवित्र हूँ। अतः सचमुच यदि तुम ईश्वर को प्रेम करना चाहते हो, तो तुम्हें भी ईश्वर बनना ही होगा - 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' - 'ईश्वर की पूजा करने के लिए तुम्हें ईश्वर ही बनना पड़ेगा।' अपने को पापी सोचने से क्या लाभ? तुम अनन्त हो। निरे अज्ञान के कारण स्वयं को सीमित समझ रहे हो। प्रत्येक व्यक्ति के पीछे वह अनन्तता विद्यमान है! तुममें अनन्त शक्ति छिपी हुई है। अतः अपने ऊपर संशय न करो। तुम जिस किसी मार्ग में जाओ, अवश्य सफल होगे। भक्तिपथ सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वह सबसे स्वाभाविक है। जो ईश्वर तुम्हारे भीतर है, उसके प्रति भक्तिवान् बनो। तुम ईश्वर के सबसे प्रत्यक्ष मन्दिर हो। बाहर के मन्दिर तो भीतर के वास्तविक मन्दिर के स्मरण करानेवाले मात्र हैं।

जब तुम अपने मन से दुर्बल करनेवाले सभी विचारों को निकाल देना चाहते हो, तो अपने विचारों पर निगरानी रखना गलत नहीं है। यदि तुम्हें साँप काट ले और तुम 'नहीं', 'नहीं' कहकर उसके विष को अस्वीकार कर दो, तो वह विष

तुम पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेगा। जो यह विश्वास करता है कि 'मैं पापी नहीं हूँ, मैं ईश्वर की सन्तान हूँ,' वह यथासमय यह अनुभव कर लेता है कि मैं सचमुच ईश्वर की सन्तान हूँ।

यदि तुम बुरी आदत को छोड़ना चाहो, तो तुम्हें उसके विपरीत अच्छी आदत का विकास करना होगा, और इसके लिए तुममें बहुत ही अधिक रजस् या कर्मठता की आवश्यकता है। जैसा कि भगवान् गीता में कहते हैं -

> दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
> मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

- 'मेरी इस गुणमयी दैवी माया को पार करना वास्तव में बड़ा कठिन है, किन्तु जो मेरी शरण में आते हैं, वे इसे पार कर जाते हैं।'

माया ईश्वर की शक्ति है। ईश्वर तथा उनकी शक्ति में कोई भेद नहीं है। जैसे बिना मिठास के शक्कर की कल्पना नहीं की जा सकती, और बिना धवलता के दूध की, उसी प्रकार ईश्वर की शक्ति को छोड़ ईश्वर की कल्पना नहीं की जा सकती। हम किसी अधिकारहीन व्यक्ति से प्रार्थना नहीं करते, क्योंकि हम जानते हैं कि वह निरर्थक होगी। ईश्वर सर्वशक्तिमान हैं, इसलिए हम उनसे प्रार्थना करते हैं। इसीलिए जो भी ईश्वर से प्रार्थना करता है, वह शक्ति की ही पूजा करता है। संसार का प्रत्येक व्यक्ति शाक्त है, क्योंकि ऐसा कौन है, जो शक्ति की पूजा नहीं करता?

ईश्वर बादलों के ऊपर कहीं नहीं रहते। वे प्रत्येक प्राणी के हृदय में वास करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं - ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति - 'हे अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं।'

सामान्य प्राणी इसे नहीं जानते। ईश्वर हमारे सामने अज्ञानी के रूप में, अभावग्रस्त के रूप में, रोगी के रूप में, अनाथ के रूप में, भूखे के रूप में आते हैं, जिससे कि इन रूपों में उनकी सेवा कर हम अपने को उन्नत कर सकें। केवल कर्म करने में हमारा अधिकार है, उसके फल में नहीं। परिणाम हमारे हाथों में नहीं है। अतः दूसरों का कल्याण करने की भावना की अपेक्षा सदैव अपने ही कल्याण के लिए हम अधिक सचेष्ट हों, क्योंकि वे सब तो ईश्वर के ही हैं तथा जैसे भी हैं, उन्हें ईश्वर ही बनाते हैं। हम न तो ईश्वर को सुधार सकते हैं, और न ही उनकी कार्यपद्धति में कोई दोष देख सकते हैं। वह महान् मूर्खता होगी। हम दूसरों की सेवा द्वारा अपना विस्तार कर अपने आप की ही सेवा करते हैं।

एक बच्चा अपने माता या पिता से जो उसे चाहिए क्या नहीं माँगता, यह जानते हुए कि उसकी माँग अवश्य पूरी होगी? ठीक उसी प्रकार तुम भी अपने ईश्वर से उस सबके लिए प्रार्थना करो, जिसकी तुम्हें ईश्वर-साक्षात्कार के लिए आवश्यकता है। तुम ईश्वर की सन्तान क्यों होना चाहते हो? जगज्ज्वाला से छूटने के लिए ही तो? अतः भक्ति और ज्ञान में अन्तर कहाँ है?

मैं तुम्हें यह बता दूँ कि शान्ति मनुष्य की अपनी मानसिक सम्पत्ति है। इसलिए तुम अपनी गृहस्थी के मामलों या सामाजिक मामलों को कभी भी अपने मन की पवित्र सीमा में प्रवेश न करने दो, जहाँ तुम पर शान्ति और आनन्द की वर्षा करते हुए परमशिव ही सर्वोच्च शासन करें।

निस्सन्देह मनुष्य जब अपने सर्वाधिक अपराजेय शत्रु - अहंकार - से मुक्त हो, तभी सम्पूर्ण आत्मसमर्पण आ सकता है। यह भाव कि मैं अमुक अमुक हूँ, हमारे बार बार जन्म और मरण का कारण है। जितनी अधिक मात्रा में तुम अपने इस अहंकार से छूट सकोगे, उतनी ही अधिक मात्रा में तुम अपने आध्यात्मिक स्वरूप की अनुभूति करने में समर्थ हो सकोगे, जो कि अभी इस अहंकार से ढका हुआ है। यह व्यक्तिवाचक सर्वनाम 'मैं' ही हमारे सब दुःखों की जड़ है। अतः किसी भी प्रकार इस अहंकार से छूटना ही हमारा सबसे पहला कर्तव्य है। यह कार्य महापुरुषों की सेवा के द्वारा, निष्काम कर्म के द्वारा, ध्यान या विवेक के द्वारा सम्पादित किया जा सकता है। इनमें से प्रथम सहजतम तथा श्रेष्ठतम है। यदि तुम स्वयं को एक सच्चे गुरु के चरणों में समर्पित कर सको, तो तुम्हारे इस सेवाभाव से ही धीरे धीरे तुम्हारा अहंकार मिट जायगा। यदि कोई मनुष्य सचमुच स्वयं को श्रीरामकृष्णदेव के मार्गदर्शन में समर्पित कर देता है, तो वे तुरन्त उसकी रक्षा करेंगे। किन्तु यह कार्य बहुत ही कम व्यक्ति - प्रायः कोई भी नहीं - कर सकते हैं, क्योंकि हर व्यक्ति कम या अधिक मात्रा में अहंकारी है ही। यदि ईश्वर के लिए कष्ट सहने से तुम्हारा तात्पर्य शरणागति है, और जिसे मैं इसका उचित अर्थ ही समझता हूँ, तो संसार में लगभग कोई भी इसका अधिकारी नहीं है। यदि मैं यहाँ हूँ और यहाँ प्रसन्न रहना चाहता हूँ, तो मुझे वही करना चाहिए, जो मुझे सभी भयों से मुक्त कर दे तथा पूर्णतः प्रसन्न बना दे। उनकी सन्तान होने के कारण मुझे कोई भय नहीं है, क्योंकि सर्वशक्तिमान परम दयालु परमेश्वर को मेरी चिन्ता करनी है। ईश्वर तुम्हारे माता-पिता दोनों हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

- 'तुम्हीं मेरी माता हो और तुम्हीं मेरे पिता, तुम्हीं मेरे बन्धु हो और तुम्हीं मेरे सखा, तुम्हीं मेरी विद्या हो और तुम्हीं मेरा धन; हे प्रभु, तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो।'

और श्रीरामकृष्ण ये सब कुछ हैं।